Mr. Chairman: Is he withdrawing his resolution?

Shri B. P. Yadava: Yes.

Mr. Chairman: Does he have the leave of the House to withdraw his resolution?

Some Hon. Members: Yes.

The resolution was, by leave, withdrawn.

16.40 hrs.

RESOLUTION *RE:* NATIONAL POLICY IN EDUCATION

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद (नालंदा) : सभापति महोदय, मैं निम्नलिखित प्रस्ताव पेश करता हूं ।

> "इस सभा की यह राय है कि शिक्षा सम्बंधी राष्ट्रीय नीति के सभी पहलुओं पर विचार करने और आगामी तीन योजना अवधियों के लिये तदनुसार कार्यक्रम तयार करने तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए समुचित शासनतंत्र का सुझाव भी देने के लिए संसद सदस्यों की एक समिति नियुक्त की जाये ।"

16.41 hrs.

[SHRIMATI RENU CHAKRAVARTTY *in the Chair*]

इसके साथ ही मैं अपना यह संशोधन भी पेश करता हूं कि :

> "संसद सदस्यों की एक समिति के स्थान पर 'शिक्षा आयोग' का प्रयोग किया जाये ।"

मैंने इस संकल्प को इस सदन के सामने बहुत सोच विचार के बाद कई कारणों से उपस्थित किया है। उन में सब से बड़ा कारण यह है कि साधारण तौर से हमारी सरकार का ध्यान शिक्षा की ओर कम है, और शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्न पर जितना जोर दिया जाना चाहिये उस सम्बंध में नीति निर्धारण में जितनी स्पष्टता होनी चाहिए और उस के प्रति हमारे दिल में जो भावना होनी चाहिये, उसका हम अभाव पाते हैं । यह सही है कि इस साल जब शिक्षा विभाग की मांग प्रस्तुत की गई तो उसके साथ ही जो रिपोर्ट हमारे सामने आई उस में हम पाते हैं कि पहली बार हमारी केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा के प्रति उसका जो दायित्व है उसे स्वीकार किया है । लेकिन यह स्थिति बड़ी दुखद है कि १७ वर्षों के बाद केन्द्रीय सरकार ने इस बात का अनुभव किया कि शिक्षा के प्रति भी उस का कुछ दायित्व है । यह और भी दुखद बात है कि हम यह भूल गये कि राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था तब महात्मा गांधी ने वार्धा में सन् १९३७ में शिक्षा के सम्बंध में जो सम्मेलन हुआ था उस में यह बात कही थी कि बाद में हम अनुभव करेंगे कि अगर इस देश को मैंने कोई सब से महत्वपूर्ण चीज दी है तो वह शिक्षा सम्बंधी हमारी योजना है, हमारा दृष्टिकोण है । यह बड़े दुःख की बात है कि जिन लोगों के हाथ में इस देश का नेतृत्व रहा वे राष्ट्र पिता के इस अक्षराधिकार को, उनकी इस देन को भूल गये

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन १७ वर्षों में हमने अभी तक कई नीतियों की घोषणा की है और कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये है लेकिन शिक्षा के सम्बंध में हमने अभी तक कोई नीति घोषित नहीं की है, अपना कोई दृष्टिकोण स्थिर नहीं किया है । और जगह की अस्पष्टता हो सकती है, नीति का अभाव हो सकता है, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में नीति की जितनी अस्पष्टता है, जितना अभाव है, एकसूत्रता की जितनी कमी है, एक आदर्श का जितना अभाव है, वैसा सम्भवतः किसी दूसरे क्षेत्र में नहीं है । इसी लिये हम अक्सर सुनते हैं कि विद्यार्थियों में असन्तोष है, शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है, देश में भावात्मक एकता की कमी है, राष्ट्रीय भावना कमजोर होती जा रही है और राष्ट्र निर्माण के लिये जैसी निष्ठा चाहिये, जैसा संकल्प चाहिये, जैसा

आदर्श चाहिये, जैसा मनोबल चाहिये, विचार की जैसी स्पष्टता चाहिये, वह हम में नहीं है। इसीलिए कभी भाषा के नाम पर झगड़े होते हैं कभी धर्म के नाम पर झगड़े होते हैं, कभी जाति के नाम पर झगड़े होता है, कभी प्रान्तीयता के नाम पर झगड़ा होता है, कभी कभी किसी दूसरी बात को ले कर झगड़ा होता है, और यह झगड़ा इतना उग्र होता है कि हमारी सारी राष्ट्रीय शक्ति सन १९४७ से लेकर अब तक, इसी में लग जाती रही है।

देश का विभाजन हुआ। देश के विभाजन के कारण जो परिस्थितियां उत्पन्न हुई, उनका हम पूरे तौर से अब तक मुकाबला नहीं कर सके हैं उसी प्रकार और दूसरी समस्यायें भी हमारे सामने आती हैं। उन समस्याओं के सम्बध में भी जो दृष्टिकोण हमारा होना चाहिए उसमें भी हमारे सामने स्पष्टता नहीं रह पाती है। मेरे ख्याल से इसका सब से बड़ा कारण यह है कि यदि हमने इतने वर्षों में राष्ट्रीय शिक्षा की कोई स्पष्ट नीति निर्धारित की होती और उस के आधार पर हम अपने देश के युवकों और युवतियों की शिक्षा की व्यवस्था करने में सफल होते तो सम्भवतया हमारा एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित होता। राष्ट्रीय दृष्टिकोण बिकसित होने से मेरा हर्गिज यह तात्पर्य नहीं है कि इस देश का हर नागरिक किसी भी सवाल के बारे एक ही राय रक्खे। ऐसा मैं नहीं समझता हूं। लेकिन कुछ ऐसी बुनियादी बातें हो सकती हैं जिन पर राष्ट्र के नागरिकों का अगर साधारण तौर से एक प्रकार का दृष्टिकोण न हो या उन बुनियादी प्रश्नों के प्रति अगर राष्ट्र के नागरिकों की एक प्रकार की प्रतिक्रिया न हो तो वस्तुतः हम एक राष्ट्र कहलाने के दुनिया में अधिकारी नहीं रह जाते हैं। हमारा जो भी ऐसे मूलभूत, बुनियादी प्रश्नों के प्रति दृष्टिकोण हो, जो भी प्रतिक्रिया हो, वह एक भारतीय की होनी चाहिये। लेकिन बहुधा हम भारतीय के रूप में अपने को नहीं सोचते हैं। कभी काश्मीरी के रूप में सोचने लगते हैं, कभी बंगाली के रूप में सोचने लगते हैं, कभी बिहारी के रूप में सोचते हैं, कभी उत्तर भारत के निवासी के रूप में सोचते हैं, कभी दक्षिण भारत के निवासी के रूप में सोचते हैं, कभी अपने को हिन्दी भाषी के रूप में सोचते हैं कभी अहिन्दी भाषी के रूप में सोचते हैं, कभी हिन्दू के रूप में सोचते हैं कभी मुसलमान के रूप में सोचते हैं और कभी ईसाई के रूप में सोचते हैं। यह इतनी दूखद स्थिति है कि इस स्थिति से उत्पन्न परिस्थितियों का मुकाबला करने में इस देश की केन्द्रीय सरकार की अथवा इस देश की राज्य सरकारों की सारी शक्ति लग जाती है। इस देश में जो विभिन्न दल हैं उन सारे दलों की शक्ति उन विघटन प्रवृत्तियों का मुकाबला करने में लग जाती है। यह स्थिति बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण है। यह बड़ी चिन्ता की बात है कि इस महत्वपूर्ण विषय की ओर सरकार का ध्यान नहीं गया। इसी लिये मैंने यह आवश्यक समझा कि संसद् के सामने मैं ऐसा संकल्प पेश करूं जो इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करे।

दो साल पहले या तीन साल पहले इस बात की चर्चा चली कि हमारे देश में विघटन की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती रही हैं जिस के लिये राष्ट्रीय एकता सम्मेलन भी बुलाया गया और इस के साथ इस के लिये डा० सम्पूर्णनन्द की अध्यक्षता में एक भावात्मक एकता समिति भी गठित की गई। समिति ने दो साल पहले अपनी रिपोर्ट दे दी है, लेकिन यह जान कर सदन को दुःख होगा कि अभी तक सरकार ने इस समिति की सिफारिशों के सम्बन्ध में अपना कोई मत निश्चित नहीं किया है। इस समिति की सिफारिशों के मुताबिक कोई कदम उठाना तो दूर की बात है, जब सरकार अभी तक उस समिति की सिफा-

[श्री सिद्धेश्वर प्रसाद]

रिशों के बारे में किसी निश्चय पर नहीं पहुंची है तो कोई कदम कैसे उठा सकती है । निश्चय ही इस समिति की सिफारिशें बहुत महत्व-पूर्ण हैं, लेकिन जैसा अक्सर होता है, सरकार जनता की मांग पर अथवा परिस्थितियों का किसी प्रकार से मुकाबला करने के लिये या लोगों का मुंह बन्द करने के लिये कोई समिति गठित कर देती है। उसकी रिपोर्ट आने में अक्सर समय लग जाता है, तब तक हम चुप रहते हैं, और फिर विचार करने में समय लग जाता है । तब तक दूसरी समस्यायें खड़ी हो जाती है । लेकिन इतने महत्वपूर्ण प्रश्न की उपेक्षा की जाय इस के निश्चत रूप से यह अर्थ होते हैं कि हम राष्ट्र निर्माण के प्रश्न, या ऐसी बुनियादी समस्याओं, को हल करने से अपने को बचाने की कोशिश करते हैं, उस को टालने की कोशिश करते हैं । यह स्थिति बड़ी दुखद है ।

हमारे संविधान में ऐसा कहा गया था कि जब से संविधान लागू होगा उसके पन्द्रह वर्षों के बाद इस देश के १४ वर्ष तक की आयु के युवक युवतियों के लिये अनिवार्या और निःशुल्क शिक्षा की हम व्यवस्था करेंगे । न केवल इस के लिये अभी तक कोई कार्य-क्रम निर्धारित नहीं किया गया बल्कि प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार ने कोई स्पष्ट नीति तक नहीं निर्धारित की । विश्वविद्यालय शिक्षा के लिये एक आयोग गठित किया गया, जिस के अध्यक्ष डा० राधाकृष्णन थे । इसी प्रकार से माध्यमिक शिक्षा के लिये भी एक आयोग का गठन किया गया, जिस के अध्यक्ष डा० मुदालियार थे, लेकिन प्राथमिक शिक्ष के सम्बन्ध में न तो सरकार ने कोई नीति निर्धारित की न आयोग का गठन किया प्राथमिक शिक्षा हमारी पब्लिक स्कूल जैसी शिक्षा हो, वह बुनियादी शिक्षा की पद्धति पर हो, अंग्रेजी शिक्षा की पद्धति पर हो, अमरीकी शिक्षा की पद्धति पर हो, मांटसोरी पद्धित पर हो, किस पद्धति पर हमारी शिक्षा हो, इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं है।

16.49 hrs.

[MR. DEPUTY-SPEAKER *in the Chair*]

जब हम चाहते हैं, और संविधान में हमारे नागरिकों को इस प्रकार से अधिकार दिया गया है, कि हम सब के साथ सामाजिक न्याय करेंगे, तो जब तक हम शिक्षा की नीति स्पष्ट नहीं करते हैं और अपने नागरिकों को, चाहे वह अमीर हों या गरीब हों, शिक्षा के समान साधन हम प्रदान नहीं करते हैं, तब तक सामाजिक न्याय अथवा आर्थिक न्याय की बात उठाना ही बिल्कुल हास्यास्पद मालूम होता है । एक विद्यार्थी है जो पैसे के बल पर पब्लिक स्कूल में पढ़ता है, उसको हर तरह की सुविधा दी जाती है । और दूसरा विद्यार्थी है जिस के पढ़ने की कोई सुविधा नहीं है । गांवों के जो स्कूल हैं उनमें योग्य शिक्षकों का अभाव है । वहां पढ़ाई की कोई सुविधा नहीं है, न अन्य कोई सुविधा है । उसके बाद हम कहते हैं कि गांव के उस विद्यार्थी और पब्लिक स्कूल के विद्यार्थी में प्रतियोगिता करायेंगे और उसमें जिसको योग्य पायेंगे उसे सिविल सरविस में या और ऊंचे पदों पर रखेंगे । अगर यह घोर अन्याय नहीं है तो और क्या है । इसलिए इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि सारे देश में प्राथमिक शिक्षा की एक ही पद्धति होनी चाहिए । अगर सरकार समझती है कि पब्लिक स्कूल की जो पद्धति है वही सर्वश्रेष्ठ है तो सारे देश में वही पद्धति चले, अगर सरकार समझती है कि अंग्रेजी की चलायी गयी पद्धति सर्वोत्तम है तो सारे देश में उसी के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का ढांचा

होना चाहिए, अगर सरकार यह अनुभव करती है कि गांधी जी की बुनियादी शिक्षा सर्वोत्तम शिक्षा पद्धति है तो उसे केवल गांवों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए, शहरों में भी उसी प्रकार के बुनियादी स्कूल खोले जाने चाहिए। लेकिन इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नीति नहीं है। अगर हम सारे देश के ६ साल से १४ साल तक के बच्चों के लिए एक प्रकार की शिक्षा पद्धति लागू कर दें, तो हम उसके बाद योग्यता के आधार पर आगे की शिक्षा के लिए उनका चयन कर सकते हैं। जो योग्य विद्यार्थी हो, वह चाहे अमीर परिवार को हो या गरीब परिवार का हो, उसकी आर्थिक स्थिति कैसी भी हो, चाहे वह किसी प्रान्त का हो, चाहे वह किसी भाषा का बोलने वाला हो, चाहे उसका कोई भी धर्म हो, अगर हम उसको योग्य पाते हैं तो हमें उसकी आगे की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। इसके पश्चात् माध्यमिक शिक्षा के बाद जो विद्यार्थी अच्छे साबित हों उनको टैकनिकल स्कूलों में भेज सकते हैं। तो जब तक आप योग्यतावाद को नहीं अपनायेंगे तब तक वस्तुतः देश में प्रजातंत्र सफल नहीं हो सकता। अभी तक देश की जनता में प्रजातंत्र की पद्धति के प्रति गहरा विश्वास उत्पन्न नहीं हो सका है। वह नहीं पाती कि इस प्रकार की जो भेदभाव की दीवारें हमारे सामने खड़ी हैं उनको दूर करने में हम सफल हो सके हैं या हम ने अब तक उस दिशा में कोई बुनियादी प्रयत्न किया है।

हमारे देश में अनेक समस्यायें हैं जैसा कि मैं ने आरम्भ में संकेत किया था। भाषा की समस्या है, धर्म की समस्या है, प्रान्त की समस्या है। लेकिन इन सब से महत्वपूर्ण समस्या यह है—हो सकता है कि उसका कारण हमारी हजारों साल की गुलामी हो, कि हमारे देश में विकास का स्तर भिन्न भिन्न हो गया है। देश में ऐसे भी वर्ग हैं जो मालूम पड़ता है कि बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी में हैं, देश में कुछ ऐसे भी वर्ग हैं आर्थिक दृष्टि से १७वीं या १८वीं शताब्दी के मालूम पड़ते हैं कुछ ऐसे भी वर्ग हैं जो विकास की दृष्टि से १९वीं या बीसवीं शताब्दी में रह रहे हैं, और कुछ थोड़े लोग ऐसे भी हैं जो दुनिया के किसी भी विकसित देश के लोगों से आर्थिक, सामाजिक या अन्य दृष्टियों से पीछे नहीं हैं। इस भिन्नता का परिणाम है कि भिन्न भिन्न स्तर के लोगों की प्रतिक्रिया कुछ खास समस्याओं के प्रति भिन्न भिन्न होती है। इस वजह से देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन में तनाव उत्पन्न होता है और एकता में कमी आती है। इस विभिन्नता के कारण एक और कठिनाई भी पैदा होती है कि हम वि[illegible] बुनियादी प्रश्न पर राष्ट्रीय दृष्टि से नह[illegible] पाते। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि देश में राष्ट्रीय शक्ति का विकास हो, तो इसके लिए आवश्यक है कि ये जो आर्थिक और सामाजिक विकास में भेद हैं इसको दूर करने के लिए कोई ठोस कदम उठाया जाये, और उस ठोस कदम का एक ही तात्पर्य है कि शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार अपनी स्पष्ट नीति निर्धारित करे। बगैर इसके हम इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। मेरे सामने डब्ल्यू० ई० एफ० वार्ड की पुस्तक "एजूकेटिंग यंग नेशन्स" है। उसमें लेखक ने बताया है

> "Education must be part of general Government policy, and so it cannot help having a political aspect. It is a powerful means of social change; and as soon as the people of the country realise that, the work of education becomes surrounded with an atmosphere which is different from the atmosphere surrounding it in an independent state."

इस लेखक ने इस पुस्तक में बड़े विस्तार के साथ बताया है कि किसी भी देश में वस्तुतः शिक्षा सम्बन्धी नीति के निर्धारण में इसलिए कठिनाई उत्पन्न हो जाती है कि जिनको हम सारी शिक्षा की सुविधाएं देते हैं उन्हीं को बाद में हम को दूसरे अधिकार भी देने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में मैं कभी कभी यह सोचने

[श्री सिद्धेश्वर प्रसाद]

के लिए विवश हो जाता हूं कि सम्भवतः हम ने शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में अब तक इसलिए स्पष्ट घोषणा नहीं की है कि जिन वर्गों के हाथों में अब तक की परम्परा के अनुसार सत्ता रही है वे वर्ग नहीं चाहते हैं कि दूसरे वर्ग या वर्ण के हाथ में सत्ता जाये । अगर ऐसी बात है और इस नीति के निर्धारण में ऐसी भावना काम करती है तो निश्चय ही इसकी वजह से हमारी राष्ट्रीय शक्ति के विकास में बाधा पड़ेगी । और हमारी शक्ति उसी प्रकार अवरुद्ध हो जाएगी जैसे कि १५वीं और १६वीं शताब्दी में अवरुद्ध हो गयी थी । इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करें और शिक्षा सम्बंधी राष्ट्रीय नीति के निर्धारण की दिशा में जल्द से जल्द ठोस कदम उठावें ।

इसके साथ ही मैं दो एक और अत्यंत महत्वपूर्ण बातों की ओर इस सदन का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं ।

शिक्षा सम्बधी नीति के निर्धारण के प्रश्न का शिक्षा के माध्यम के प्रश्न से बड़ा ही गहरा सम्बध है । मेरा ख्याल है कि इस सम्बंध में सन् १९४३ में उस समय के भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार सर जौन सारजेंट ने जो युद्धेतर की शिक्षा सम्बंधी अपनी योजना प्रस्तुत की थी, उससे आज तक कोई फर्क नहीं हुआ है । राधाकृष्णन आयोग हो या मुदालियार आयोग हो, इन दोनों आयोगों ने जो सिफारिशें की हैं उनकी बुनियाद श्री सारजेंट की इन्हीं सिफारिशों में है । यह बड़े दुःख की बात है कि सन् १९४३–४४ में जो सिफारिशों की गयी हों उनके बाद हम बीस वर्ष तक इस दिशा में कुछ भी आगे बढ़ने में सफल नहीं हो सके ।

जब शिक्षा मंत्रालय की मांग पर विचार हो रहा था उस समय मैंने यह मांग की थी कि सरकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्धारण की ओर ध्यान देना चाहिए, और मैंने इस बात की ओर भी संकेत किया था कि हमारी प्रगति न होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि हम शिक्षा सम्बंधी नीति के निर्धारण में अभी तक सफल नहीं हो सके हैं । इन बातों का जबाब देते हुए हमारे शिक्षा मंत्री ने कहा था कि मैं इस बात को कबूल करता हूं कि शिक्षा केवल अमीरों की बपौती नहीं होनी चाहिए । यह घोषणा बहुत महत्वपूर्ण है और मैं ऐसी आशा करता हू कि सरकार ऐसा कदम उठाएगी जिस की वजह से एक स्वस्थ राष्ट्रीय परम्परा का विकास हो सकेगा ।

इसके साथ ही साथ अपने उसी भाषण में शिक्षा मंत्री ने स्वयं इस बात को कबूल किया था कि अभी तक हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्धारण में सफल नहीं हो सके हैं लेकिन उन्होंने यह भी कहा था कि यह कहना गलत है कि स्वतंत्रता के बाद इस दिशा में हमरा कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं हुआ है ।

पर शिक्षा के माध्यम में प्रश्न को अगर हम ध्यान में रखें और उस कसौटी पर भारत सरकार के निर्णय को कसने का प्रयत्न करें तो निश्चय ही हमें निराशा हाथ लगेगी । सन् १९४३–४४ में ही केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड तथा अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड तथा भारत सरकार की अन्य संस्थाओं ने यह निर्णय लिया था कि माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएं होंगी, और आज सन् १९६४ में भी हम यही पाते हैं कि भारत सरकार का यही फैसला है कि भारतीय भाषाएं विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम होने लायक नहीं हैं । यह बड़े दुःख की बात है सन् १९३७ में महात्मा गांधी ने हरिजन में लिखा था :

> "शिक्षा की वर्तमान पद्धति हमारे देश की आवश्यकताओं की किसी भी रूप में पूर्ति नहीं करती । अंग्रेजी को

उच्च शिक्षा का माध्यम बना दिए जाने के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त और अशिक्षित लोगों के बीच एक स्थायी दीवार खड़ी हो गई है । अंग्रेजी ने ज्ञान को जनता तक पहुचने से रोका है । अंग्रेजी को अति महत्व दिए जाने के कारण शिक्षा प्राप्त वर्ग पर ऐसा बोझ आ जाता है कि जिसके कारण मानसिक दृष्टि से वह जीवन से अलग रह जाता है, और अपने ही देश में एक अजनबी बन जाता है ।

इस महत्वपूर्ण निदेश के बाद भी आज तक इस नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया है । यह कहना गलत है कि हमारे देश में भाषाओं का पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों में तेजी से जो विकास हुआ है उसके बाद भी हमारी भाषाएं उच्च शिक्षा के माध्यम के लायक नहीं हो सकी हैं ।

इस सम्बंध में मैं सरकार का ध्यान दो महत्वपूर्ण शिक्षा शास्त्रियों के वक्तव्यों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं । हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय के एक सम्मेलन में भाषण करते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० कोठारी ने कहा था कि जब वह अपने विद्यार्थियों को अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं में हिन्दी में, पढ़ाते थे, तो विज्ञान के विषय को समझने में विद्यार्थियों को बड़ी आसानी होती थी और वस्तुतः उसकी वजह से विज्ञान में उनकी रूचि उत्पन्न होती थी और वे अनुसंधान कार्य की ओर प्रवृत होते थे ।

दूसरा विचार है योजना आयोग के सदस्य, डा० बी० के० आर० वी० राव का जिन्होंने लिखा है :

"यह दलील कि यदि हम अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम के रूप में नहीं रखेंगे तो हम अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपनी स्थिति खो देंगे, इतनी खोखली है कि इसका गम्भीरता से कोई जवाब देने की जरूरत नहीं है । जिन देशों मे अंग्रेजी नहीं है, वे अभी भी अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए हुए हैं और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से वे नगण्य नहीं हुए हैं । यह कहना कि इनमें अधिकांश देश अपने यहां अंग्रेजी को एक अतिरिक्त भाषा के रूप में लागू कर रहे हैं, भारत में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाए रखने के पक्ष में कोई दलील नहीं है ।"

उपाध्यक्ष महोदय : क्या माननीय सदस्य और समय लेना चाहते हैं ?

श्री सिद्धेश्वर प्रसाद : जी हां :

उपाध्यक्ष महोदय : तो वह अपना भाषण अगली बार जारी रखें ।

17.02 hrs.

The Lok Sabha then adjourned till Eleven of the Clock on Monday, May 4, 1964/Vaisakha 14, 1886 (Saka).

GMGIPND—LSII—555 (Ai) LSD— LSD—20-5-64—980.